राम स्वरूप

बनाम

भारत संघ व अन्य

(बी.पी. सिन्हा मुख्य न्यायाधिपति, के.एन. वान्चू,
रघुबर दयाल, एन. राजगोपाला अयंगर व जे.आर.
मुधोलकर न्यायाधिपति)

सेना अधिनियम, 1950/46, धारा 125, 126 व 164 - उद्देश्य-भारत का संविधान, 1950, अनुच्छेद 33 - मूलभूत अधिकारों पर प्रभाव - क्या सेना अधिनियम की धारा 125 संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन में है।

जनरल कोर्ट मार्शल द्वारा सेना अधिनियम की धारा 69 सपठित धारा 302 दंड संहिता के अन्तर्गत याचिकाकर्ता सिपाही को दो सिपाही और एक हवलदार के गोली मारकर हत्या करने के आरोप में सजा सुनाई। केन्द्र सरकार द्वारा सजा की पुष्टि की गई। याचिकाकर्ता की ओर से कोर्ट मार्शल के आदेश तथा केन्द्र सरकार के आदेश को निरस्त करने और याचिकाकर्ता की रिहाई हेतु बन्दी प्रत्यक्षीकरण एवं उत्प्रेषण याचिका संस्थित की गई।

अभिनिर्धारित किया गया-- 1. याचिकाकर्ता की ओर से कोर्ट मार्शल में स्वयं को अपनी पसन्द के अधिवक्ता द्वारा प्रतिनिधित्व किए जाने हेतु

कोई अनुरोध नहीं किया। परिणामस्वरूप ऐसे किसी अनुरोध को अस्वीकार नहीं किया गया और इस प्रकार याचिकाकर्ता के अपनी पसन्द के अधिवक्ता से प्रतिरक्षा के मूलभूत अधिकार का उल्लंघन नहीं हुआ।

2. अधिनियम की धारा 132 उपधारा 2 के प्रावधान का अननुवर्तन नहीं हुआ है। सेना नियम 1954 के नियम 45,46,61 उपनियम 2 तथा नियम 62 के प्रावधानो को देखते हुए याचिकाकर्ता का कथन की मृत्यु दण्ड न्यायालय के सदस्यो के अपूर्ण बहुमत, से मतदान द्वारा किया गया मात्र एक आरोप माना जा सकता हैं परन्तु यह एक निश्चित ज्ञान पर आधारित नहीं है कि नियम 61 के अन्तर्गत मतदान इस प्रकार अंतिम निष्कर्ष तक पहुंचा।

3. धारा 164 यह अभिनिर्धारित नहीं करता है कि कोर्ट मार्शल के किसी आदेश या दण्ड की शुद्धता हमेशा दो उच्च प्राधिकारियो द्वारा निर्णित की जानी चाहिए। यह मात्र दो विकल्प बताता है। कोई भी अग्रिम याचिका उस प्राधिकारी के समक्ष दी जा सकती है जो कि कोर्ट मार्शल के आदेश की पुष्टि करने वाले प्राधिकारी से उच्चतर हो और यदि पुष्टिकारक आॅथोरिटी से कोई भी उच्च प्राधिकारी नहीं है तो ऐसी स्थिति में उसके आदेश के विरूद्ध किसी विकल्प के होने का प्रश्न हीं उत्पन्न नहीं होता है।

4. सेना अधिनियम का प्रत्येक प्रावधान संसद के द्वारा बनाई गई विधि है और यदि ऐसा कोई प्रावधान संविधान के खण्ड 3 के अन्तर्गत मूलभूत अधिकारो को प्रभावित करता है तो वह प्रावधान मात्र इस आधार पर शून्य

नहीं हो जाता है, इसे इस प्रकार लिया जाना चाहिए कि संसद ने संविधान के अनुच्छेद 33 के अन्तर्गत अपनी शक्तियो का उपयोग करते हुए संबंधित मूलभूत अधिकारो को प्रभावित करने वाले आवश्यक परिवर्तन किए है।

5. अधिनियम की धारा 125 के प्रावधान विभेदक नहीं है तथा संविधान के अनुच्छेद 14 के प्रावधान का उल्लंघन नहीं करते है।

6. सेना अधिकारी का अधिनियम की धारा 125 में उल्लेखित किसी अभियुक्त को कोर्ट मार्शल या साधारण न्यायालय द्वारा विचारण किए जाने के विवेकाधिकार का उपयोग अधिनियम की किसी अन्य नीति से अनिर्देशित अथवा किसी प्राधिकारी से अनियंत्रित होना नहीं कहा जा सकता। ऐसी विभिन्न परिस्थितियां हो सकती है जो इस निर्णय को प्रभावित कर सकती है कि किसी अभियुक्त का विचारण कोर्ट मार्शल द्वारा किया जाना चाहिए अथवा साधारण आपराधिक न्यायालय द्वारा हो जाता है इसलिए यह निर्णय करने का विवेकाधिकार कि अभियुक्त का विचारण किस न्यायालय द्वारा होना चाहिए एक उत्तरदायी सेना अधिकारी जिसके अधीनस्थ अभियुक्त नौकरी कर रहा है उस पर छोड देना चाहिए। यह अधिकारी सेवा की अनिवार्यता, सेना में अनुशासन बनाए रखने, शीर्घ विचारण, अपराध की प्रकृति तथा व्यक्ति जिसके विरूद्ध अपराध किया गया है के बिन्दुओ से मार्गनिर्देशन प्राप्त करे। यह विवेकाधिकार केन्द्र सरकार के नियंत्रण के अधीन होगा।

7. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 549 के अन्तर्गत सिविल अपराध से आरोपित किसी व्यक्ति का विचारण किस संस्था द्वारा किया जाना है इसका अंतिम निर्णय केन्द्र सरकार के पास रहेगा जबकि जहां भी किसी दाण्डिक न्यायालय तथा सेना के प्राधिकारियो में फोरम को लेकर विचारो में मतभेद होगा।

मूलभूत क्षेत्राधिकार-- याचिका संख्या 166/1963

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत मूलभूत अधिकारो के प्रवर्तन हेतु ओ.पी. राणा- याचिकाकर्ता की ओर से सी.के. डपतरे, बी.आर.एल. अयंगर तथा आर.एच. देबर- प्रत्यर्थीगण की ओर से दिसम्बर 12, 1963.

न्यायालय का निर्णय पारित किया गया, न्यायाधिपति रघुवर दयाल-

याचिकाकर्ता रामस्वरूप डी.एस.सी. प्लाटून 131 में एक सिपाही था जो आयुध डिपो शकूरबस्ती से संबंधित है। एक सिपाही के रूप में, वह सेना अधिनियम 1950 जिसे, अब अधिनियम कहा जाएगा, के अधीन है।

13 जून 1962 को उसने दो सिपाही श्योताज सिंह और अदराम और एक हवलदार पालाराम की गोली मारकर हत्या कर दी, उसे तीन आरोपो में अधिनियम की धारा 69 सपठित धारा 302 भादसं में आरोपित किया गया और उसका विचारण जनरल कोर्ट मार्शल द्वारा किया गया। 12 जनवरी 1963 को जनरल कोर्ट मार्शल ने उसे तीनो आरोपो में दोषसिद्ध होना पाया तथा मृत्यृदंड से दण्डित किया।

केन्द्र सरकार ने याचिकाकर्ता को जनरल कोर्ट मार्शल द्वारा दी गई सजा तथा उनके निश्कर्ष की पुष्टि की। इसके पश्चात याचिकाकर्ता ने यह याचिका बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका तथा उत्प्रेषण याचिका की प्रकृति में जनरल कोर्ट मार्शल द्वारा 12 जनवरी 1963 को पारित दण्ड तथा उनके निष्कर्श को अपास्त किए जाने एवं केन्द्र सरकार द्वारा निश्कर्ष की पुष्टि किए जाने के आदेश को निरस्त किए जाने हेतु एवं याचिकाकर्ता जो कि तिहाड जेल में बन्दी था स्वयं कि रिहाई हेतु प्रस्तुत की। जहां उसे उसको दी गई मृत्युदण्ड की सजा का निष्पादन होने के लिए हिरासत में रखा गया।

याचिकाकर्ता की ओर से जो तर्क उठाए गए वो इस प्रकार है-

1. अधिनियम की धारा 125 के प्रावधान भेदभावपूर्ण तथा संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन में है क्योंकि किसी अपराधी व्यक्ति का विचारण कोर्ट मार्शल द्वारा किया जाना है या दाण्डिक न्यायालय द्वारा यह उक्त धारा में उल्लेखित अधिकारी के अनिर्देशित विवेकाधिकार पर छोड़ दिया गया है।

2. अधिनियम की धारा 127 जो दाण्डिक न्यायालय और कोर्ट मार्शल द्वारा उत्तरोतर विचारण का प्रावधान करती है वह संविधान के अनुच्छेद 20 के प्रावधान जो यह उपधारित करती है कि किसी व्यक्ति का विचारण और उसे दण्ड समान अपराध के लिए एक से अधिक बार नहीं दिया जा सकता के उल्लंघन में है।

3. याचिकाकर्ता को जनरल कोर्ट मार्शल ने अपने पसन्द के अधिवक्ता से प्रतिरक्षा करने हेतु अनुमति नहीं दी और इसलिए संविधान में अनुच्छेद 22 नियम 1 के प्रावधान का उल्लंघन हुआ है।

4. जनरल कोर्ट मार्शल द्वारा अपराधो का विचारण करने की प्रक्रिया की पालना भी नहीं की गई क्यांेकि मृत्यु दण्ड न्यायालय के दो तिहाई सदस्यो की सहमति से पारित नहीं किया गया है।

5. अधिनियम की धारा 164 कोर्ट मार्शल द्वारा पारित किसी आदेश से पीडित व्यक्ति को एक के बाद एक दो उपचार प्रदान करती है। नियम 1 उसे उस प्राधिकारी के समक्ष याचिका प्रस्तुत करने की अनुमति देती है जिसके पास कोर्ट मार्शल द्वारा दिए गए निष्कर्श और दण्ड की पुष्टि करने की शक्ति है तथा नियम 2 उसे केन्द्र सरकार या उपनियम में दिए गए किसी अन्य प्राधिकारी के समक्ष याचिका प्रस्तुत करने की अनुमति देती है और केन्द्र सरकार या किसी अन्य प्राधिकारी को जैसा वह उचित समझे वैसा आदेश पारित करने की अधिकारिता देते है। याचिकाकर्ता केवल एक ही उपचार का उपयोग कर सकता था क्योंकि निश्कर्ष और दण्ड जो कोर्ट मार्शल द्वारा दिया गया वह केन्द्र सरकार द्वारा पुष्ट कर दिया गया है। इसलिए याचिकाकर्ता केन्द्र सरकार के जिस आदेश से पीडित है उसके विरूद्ध किसी अन्य प्राधिकारी के समक्ष नहीं जा सकता।

याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए प्रथम तर्क को सबसे अंत में तथा अन्य तर्को को पहले लिया जाना सुविधाजनक रहेगा।

याचिकाकर्ता पर उस अपराध के लिए दूसरा मुकदमा नहीं चलाया गया है जिसके लिए उसे जनरल कोर्ट मार्शल द्वारा दोषी ठहराया गया है। इसलिए हम इस मामले में अधिनियम की धारा 127 की वैधता के प्रश्न पर निर्णय करना आवश्यक नहीं समझते है।

तीसरे बिन्दु के संबंध में, यह आरोप लगाया गया है कि याचिकाकर्ता ने मुकदमे में उसका प्रतिनिधित्व करने के लिए एक प्रैक्टिसिंग असैनिक वकील को नियुक्त करने की अनुमति के लिए कई अवसरो पर अपनी इच्छा व्यक्त की थी, लेकिन अधिकारियो ने उन अनुरोधो को अस्वीकार कर दिया और उसे बताया कि सैन्य नियमो के अन्तर्गत एक असैनिक वकील की सेवाओं की अनुमति नहीं दी जा सकती है और, उसे अपने मामले का बचाव सैन्य अधिकारियो द्वारा उपलब्ध कराए गए वकील के साथ करना होगा। जवाब में, यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता का अनुरोधो और उन्हें अस्वीकार कर दिए जाने के बारे में आरोप सही नहीं था, यह याचिका में नहीं बताया गया था, बल्कि राज्य सरकार द्वारा अपने जवाबी हलफनामे जिसमें यह कहा गया था कि किसी विधि व्यवसायी के द्वारा उनके प्रतिनिधित्व के लिए ऐसा कोई अनुरोध नहीं किया गया था और मौलिक अधिकारो से इनकार नहीं किया गया था, दायर करने के बाद उसके जवाब में बताया गया था। हमारी राय है कि याचिकाकर्ता ने अपनी पसन्द के वकील द्वारा कोर्ट मार्शल में अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए कोई अनुरोध नहीं किया था, परिणामस्वरूप ऐसे किसी अनुरोध को अस्वीकार नहीं किया

गया था और यह नहीं कहा जा सकता कि अपनी पसन्द के अधिवक्ता से प्रतिनिधित्व कराने के मौलिक अधिकार का उल्लंघन हुआ है।

अपनी याचिका के पैरेग्राफ 9 में उन्होंने यह नहीं बताया कि उनके द्वारा अपनी पसन्द के वकील द्वारा प्रतिनिधित्व करने का अनुरोध किया था, उन्होंने बस इतना कहा कि उनके कुछ रिश्तेदार जिन्होंने उनकी गिरफ्तारी के बाद उनसे साक्षात्कार की मांग की थी, उन्हें उनसे मिलने की अनुमति देने से इंकार कर दिया था और इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप उन्हें अपने परिचितो की सहायत और संसाधनो के माध्यम से अपनी पसन्द का सक्षम असैनिक अधिवक्ता नियुक्त कर सम्यक रूप से अपनी प्रतिरक्षा करने के संविधान के अनुच्छेद 22 के मूलभूत अधिकार से वंचित किया गया। यदि याचिकाकर्ता ने अपने पसन्द के वकील द्वारा बचाव के लिए कोई स्पष्ट अनुरोध किया था, तो उसे याचिका के चरण संख्या 09 में इसे स्पष्ट रूप से बताना चाहिए था। उनकी संबंधित भाषा का मतलब केवल यह हो सकता है कि वह अपने बचाव के लिए एक असैनिक वकील की व्यवस्था करने हेतु अपने रिश्तेदारो से संपर्क नहीं कर सका। यह ऐसे किसी भी सुझाव को नकार देता है कि याचिकाकर्ता द्वारा सेना प्राधिकारियो को किसी असैनिक वकील द्वारा अपना प्रतिनिधित्व करवाने की अनुमति मांगी गई और वह अस्वीकार कर दी गई।

इसलिए हम यह मानते है कि याचिकाकर्ता के अपनी पसंद के वकील द्वारा बचाव किए जाने के मौलिक अधिकार का जो संविधान के अनुच्छेद 22 (1) के अन्तर्गत किया गया है का उल्लंघन नहीं हुआ है।

इसके अतिरिक्त हम सेना नियम 1954, जिसे आगे नियम कहा जाएगा, के नियम 96 तथा संसद की संविधान के अनुच्छेद 33 के अन्तर्गत अपनी शक्तियां अन्य प्राधिकारी को प्रत्यायोजित किए जाने की सुनवाई के दौरान उठाइ गइ वैधता के प्रश्न पर विचार किया जाना आवश्यक नहीं समझते है।

याचिकाकर्ता की ओर से अगला बिन्दु यह उठाया गया है कि कोर्ट मार्शल द्वारा पारित की गई मृत्यु दण्ड की सजा अधिनियम की धारा 132(2) के प्रावधान के विरूद्ध है जहां तक कि मृत्यु दंड अपर्याप्त बहुमत के मतदान द्वारा पारित किया गया है। कोर्ट मार्शल के पीठासीन अधिकारी तथा जज एडवोकेट के हस्ताक्षर से जारी प्रमाण पत्र जो अनुलगनक- ए के रूप में प्रत्यर्थी के जवाब याचिका के साथ प्रस्तुत किया गया है वह इस प्रकार है-

> " प्रमाणित किया जाता है कि मृत्यु दंड न्यायालय के दो तिहाई सदस्यो द्वारा उनकी सहमति से पारित किया गया जैसा कि सेना अधिनियम की धारा 132(2) में प्रावधान है।
>
> "

याचिकाकर्ता का आरोप है कि यह प्रमाण पत्र असली नहीं है अपितु इसे रिट याचिका दायर करने के बाद तैयार किया गया है। हमें याचिकाकर्ता के आरोपो को स्वीकार किए जाने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है। उन्हें जनरल कोर्ट मार्शल के सदस्यो के मतदान के बारे में पता नहीं चल सकता। नियम 45 शपथ या प्रतिज्ञान का प्रारूप देता है जो कोर्ट मार्शल के प्रत्येक सदस्य को दिया जाता है। इसमें उसे आबद्ध किया जाता है कि वह किसी भी समय कोर्ट मार्शल के किसी विशेष सदस्य के मत या राय का खुलासा नहीं करेगा या पता नहीं लगाएगा, जबतक कि विधिक प्रक्रिया के अन्तर्गत उसे किसी न्यायालय या कोर्ट मार्शल द्वारा साक्ष्य देने को ना कहा जाए। इसी तरह का प्रावधान शपथ या प्रतिज्ञान के प्रारूप का नियम 46 के अनुसरण में जज एडवोकेट को दिलाया जाता है। नियम 61 में यह प्रावधान है कि न्यायालय अपने निष्कर्ष के संबंध में विचार-विमर्श बंद न्यायालय में जज एडवोकेट की उपस्थिति में करेंगे। इसलिए यह स्पष्ट है कि केवल न्यायालय के सदस्य तथा जज एडवोकेट की ही जानकारी में यह होता है कि कोर्ट मार्शल के सदस्यो द्वारा अपना मत कैसे दिया गया है। मत लिखित में नहीं दिए जाते है। ना ही उनका कोई अभिलेख रखा जाता है। नियम 61 के उपनियम 02 में प्रावधान है कि न्यायालय के प्रत्येक सदस्य की निष्कर्ष के संबंध में दी गइ राय प्रत्येक आरोप के लिए पृथक से मौखिक शब्दो द्वारा दी जाएगी। नियम 62 में प्रावधान है कि प्रत्येक आरोप जिसके लिए अभियुक्त को आरोपित किया गया है पर निष्कर्ष अभिलिखित किया जाएगा और उन अपवादो के अतिरिक्त जो

नियम में दिए गए है, मात्र "दोषसिद्ध " या " दोषी नहीं " को निष्कर्ष अभिलिखित होगा। इन प्रावधानो को दृष्टिगत रखते हुए, याचिकाकर्ता का कथन जो मात्र एक आरोप माना जा सकता है, ऐसे किसी निश्चित ज्ञान पर की नियम 61 के अनुसरण में निष्कर्ष पर विचार करते हुए मतदान किस प्रकार हुआ, पर आधारित नहीं हो सकता।

इसके अतिरिक्त प्रमाण पत्र में जो कहा गया है उस पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है जो कि जवाब याचिका के अनुसार कोर्ट मार्शल की प्रक्रिया को निर्धारित करने वाले किसी प्रावधान के अनुसरण में अभिलिखित नहीं किया गया है और किसी ऐसी प्रक्रिया के भाग के रूप में नहीं है। यह पुष्टि करने वाले प्राधिकारियो की संतुष्टि के लिए अभिलिखित किया गया है। प्रमाण पत्र 12 जनवरी 1963 का है, जिस दिनांक को याचिकाकर्ता को दोषसिद्ध किया गया। कर्नल एन.एस बेन्स, डेप्यूटी जज एडवोकेट जनरल, सेना मुख्यालय, नई दिल्ली द्वारा प्रस्तुत शपथ पत्र में याचिकाकर्ता के प्रमाण पत्र असत्य और मनगढ़त होने व रिट याचिका प्रस्तुत होने के बाद निष्पादित किए जाने के आरोपो से इंकार किया गया है। हम याचिकाकर्ता के आरोपो को कर्नल बेन्स द्वारा शपथ पत्र में किए गए कथन जिन्हें कि प्रदर्श ए जो कोर्ट मार्शल के पीठासीन अधिकारी तथा जज एडवोकेट, जिनके पास गलत प्रमाण पत्र जारी किए जाने का कोई कारण नहीं था द्वारा हस्ताक्षरित है से भी समर्थन मिलता है, से प्राथमिकता देने का कोई कारण नहीं देखते है। इसलिए हम यह अभिनिर्धारित करते है

कि अधिनियम की धारा 132 उपधारा 2 के प्रावधानो का अननुवर्तन नहीं हुआ है।

अब हम पांचवे बिन्दु पर आते है। यह सही है कि अधिनियम की धारा 164 कोर्ट मार्शल के किसी आदेश, निष्कर्ष या सजा से व्यथित व्यक्ति को दो उपचार देती है, वे यह है कि प्राधिकारी जो कि ऐसे आदेश निष्कर्ष या सजा की पुष्टि करने की प्राधिकारिता रखते है उनके समक्ष याचिका प्रस्तुत की जाए और ऐसे आदेश या सजा की पूर्ववर्ती प्राधिकारी द्वारा पुष्टि होने पर केन्द्र सरकार या उपनियम 02 मंे उल्लेखित किसी अधिकारी के समक्ष याचिका प्रस्तुत की जाए। जिसके समक्ष पीडित व्यक्ति कोर्ट मार्शल के आदेश के विरूद्ध जा सकता है वह वो प्राधिकारी है जिसका उल्लेख धारा 164 उपनियम 02 में किया गया है और यदि यह प्राधिकारी पुष्टिकारक प्राधिकारी होता है तो यह स्पष्ट है कि पुष्टिकारक आदेश के विरूद्ध पीडित पक्षकार द्वारा किसी अन्य उच्च प्राधिकारी को याचिका नहीं दी जा सकती। अग्रिम याचिका केवल कोर्ट मार्शल के आदेशो को संपुष्ट करने वाले प्राधिकारी से उच्चतर प्राधिकारी को ही प्रस्तुत की जा सकेगी और यदि पुष्टि करने वाले प्राधिकारी से उच्चतर कोई प्राधिकारी नहीं है तो उनके आदेश के विरूद्ध उपचार होने का प्रश्न हीं उत्पन्न नहीं होता है। धारा 164 यह प्रावधान नहीं देती है कि कोर्ट मार्शल के आदेश या सजा की शुद्धता हमेशा ही दो उच्चतर प्राधिकारियो द्वारा निर्धारित की जानी चाहिए। यह मात्र दो उपचारो का प्रावधान देती है।

अधिनियम की धारा 153 अन्य बातो के साथ यह प्रावधान करती है कि जनरल कोर्ट मार्शल द्वारा पारित कोई भी निष्कर्ष या सजा वैध नहीं होगी जब तक कि अधिनियम के प्रावधानो के अन्तर्गत उसकी पुष्टि ना की जाए और धारा 154 यह प्रावधान करती है कि जनरल कोर्ट मार्शल के निष्कर्ष व सजा की पुष्टि केन्द्र सरकार या उनकी ओर से केन्द्र सरकार के वारन्ट द्वारा प्राधिकृत अधिकारी द्वारा की जा सकेगी। यह प्रकट होता है कि हस्तगत प्रकरण में जनरल कोर्ट मार्शल द्वारा याचिकाकर्ता को दी गइ सजा की पुष्टि केन्द्र सरकार द्वारा स्वयं अपनी शक्तियों का उपयोग करने में की गई है। केन्द्र सरकार धारा 164 उपधारा 02 में उल्लेखित सर्वोच्च प्राधिकारी है। इसलिए किसी अन्य निकाय को कोई अग्रिम अपील दिए जाने का अवसर ही नहीं है और इसलिए इस तथ्य के विषय में कोई उचित शिकायत नहीं की जा सकती है कि याचिकाकर्ता के पास दूसरी याचिका के साथ किसी अन्य प्राधिकारी के समक्ष जाने का कोई अवसर नहीं था जैसा कि संभवतः उसे उपलब्ध हो सकता था यदि सजा की पुष्टि केन्द्र सरकार से अधीनस्थ किसी प्राधिकारी द्वारा की जाती। अधिनियम स्वयं ही यह प्रावधान देता है कि जनरल कोर्ट मार्शल के निष्कर्ष व सजा की पुष्टि केन्द्र सरकार को की जानी है इसलिए धारा 164 के प्रावधानो पर विचार नहीं किया जा सकता की केन्द्र सरकार इस शक्ति का उपयोग नहीं कर सकती अपितु उसे हमेशा इस शक्ति का उपयोग अपने स्थान पर वारन्ट के द्वारा किसी अन्य अधिकारी को करने हेतु सशक्त करना चाहिए।

इसलिए हम इस तर्क में कोई बल होना नहीं मानते है।

अंत में, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री राणा ने पहले तर्क के समर्थन में आग्रह किया कि संविधान के अनुच्छेद 33 के खण्ड 3 के अन्तर्गत मूलभूत अधिकारो को परिवर्तित करने की संसद की शक्ति का उपयोग करते हुए संसद ने सेना के अधिनियम की धारा 21 का प्रावधान दिया जो केन्द्र सरकार को नोटिफिकेशन के माध्यम से कुछ विशिष्ट मामलो में किसी व्यक्ति के अधिकार को इस सीमा तक वर्जित करने हेतु नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है कि इस प्रकार के मामले संविधान के अनुच्छेद 14, 20 और 22 में दिए गए मूलभूत अधिकारो के अन्तर्गत नहीं आएंगे तथा यह संसद के किसी अन्य मूलभूत अधिकार को परिवर्तित नहीं करने के आशय को दर्शित करता है।

विद्वान अटॉर्नी-जनरल ने आग्रह किया है कि संपूर्ण अधिनियम संसद द्वारा अधिनियमित किया गया है और यदि अधिनियम का कोई भी प्रावधान संविधान के भाग 3 के किसी भी अनुच्छेद के प्रावधानों के अनुरूप नहीं है, तो इसे इस तरह लेना चाहिए कि असंगतता की हद तक संसद ने उन अनुच्छेदों के तहत मौलिक अधिकारों को उस अधिनियम के अधीन व्यक्ति पर लागू करने के लिए संशोधित किया था। अधिनियम में ऐसा कोई भी प्रावधान पूरे अधिनियम जितना ही कानून है। हम इस बात से सहमत हैं कि अधिनियम का प्रत्येक प्रावधान संसद द्वारा बनाया गया कानून है और यदि ऐसा कोई प्रावधान संविधान के भाग 3 के तहत मौलिक अधिकारों को

प्रभावित करता है, तो वह प्रावधान, उस कारण से, शून्य नहीं हो जाता है, क्योंकि इसे होना ही चाहिए । यह माना जाना चाहिए कि संसद ने संविधान के अनुच्छेद 33 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए। संविधान के अनुच्छेद 33 से संबंधित मौलिक अधिकार को प्रभावित करने के लिए अपेक्षित संशोधन किया। हालाँकि हमारी राय है कि अधिनियम की धारा 125 के प्रावधान भेदभावपूर्ण नहीं हैं और संविधान के अनुच्छेद 14 के प्रावधानों का उल्लंघन नहीं करते हैं। यह विवादित नहीं है कि जिन व्यक्तियों पर अधिनियम की धारा 125 के प्रावधान लागू होते है एक विशिष्ट वर्ग बनाते है। वे उन सभी व्यक्तियों पर लागू होते हैं जो अधिनियम के अधीन हैं और ऐसे व्यक्तियों को अधिनियम की धारा 2 में निर्दिष्ट किया गया है। याचिकाकर्ता का तर्क यह है कि ऐसे व्यक्तियों पर सिविल अपराधों के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है यानी ऐसे अपराध जो अधिनियम की धारा 3 उपधारा 2 के अनुसार आपराधिक न्यायालय द्वारा विचारणीय है, मार्शल कोर्ट और साधारण आपराधिक न्यायालय दोनों द्वारा, अर्थात अधिनियम की धारा 125 में निर्दिष्ट कुछ अधिकारियों को यह निर्णय लेने का विवेक देता है कि क्या किसी विशेष आरोपी पर कोर्ट मार्शल या आपराधिक न्यायालय द्वारा मुकदमा चलाया जाएगा, कि अधिनियम में ऐसे अधिकारियों को अपने विवेक के प्रयोग में मार्गदर्शन करने के लिए कुछ भी नहीं है और वह इसलिए एक ही अपराध के दोषी विभिन्न व्यक्तियों के बीच भेदभाव होने की संभावना है क्योंकि एक विशेष अधिकारी यह निर्णय ले सकता है कि एक आरोपी पर कोर्ट मार्शल द्वारा मुकदमा चलाया जाएगा

और उसी अपराध के आरोपी दूसरे व्यक्ति पर आपराधिक न्यायालय द्वारा मुकदमा चलाया जाएगा, इन विचारणो की प्रकियाएं अलग-अलग होती है।

हमें कोर्ट मार्शल द्वारा अपराधों की सुनवाई के संबंध में अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों और नियमों से अवगत कराया गया है। कोर्ट मार्शल द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया काफी विस्तृत है और आम तौर पर आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत प्रक्रिया के पैटर्न का पालन करती है। हालाँकि, भौतिक अंतर भी हैं। कोर्ट मार्शल के सभी सदस्य सैन्य अधिकारी हैं जिनसे आपराधिक न्यायालयों के पीठासीन अधिकारियों की तरह प्रशिक्षित न्यायाधीश होने की उम्मीद नहीं की जाती है। कोई निर्णय दर्ज नहीं किया गया है. कोर्ट मार्शल के आदेश के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जाती है। वे प्राधिकारी भी गैर-न्यायिक प्राधिकारी हैं जिनके समक्ष दोषी व्यक्ति कोर्ट मार्शल द्वारा अपनी दोषसिद्धि के विरुद्ध प्रतिनिधित्व कर सकता है। इन परिस्थितियों में, कोर्ट मार्शल की तुलना में सामान्य आपराधिक न्यायालय द्वारा की गई सुनवाई अभियुक्त के लिए अधिक फायदेमंद होगी। फिर सवाल यह है कि क्या यह तय करने में संबंधित अधिकारियों का विवेक कि किस अदालत को किसी विशेष आरोपी पर मुकदमा चलाना चाहिए, एक अनियंत्रित विवेक कहा जा सकता है, जैसा कि अपीलकर्ता ने तर्क दिया है। धारा 125 में स्वयं ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे विवेक के प्रयोग के लिए मार्गदर्शक कहा जा सके, लेकिन अधिनियम में पर्याप्त सामग्री है जो नीति को इंगित करती है जो विवेक के प्रयोग के लिए

मार्गदर्शक होगी और यह अपेक्षित है विवेक का प्रयोग उसके अनुसार किया जाता है। मजिस्ट्रेट और सैन्य अधिकारियों के विचारों में मतभेद होने पर मजिस्ट्रेट उससे और सरकार से सवाल कर सकते है कि मामले का अंतिम निर्णय करें।

धारा 69 उस सजा का प्रावधान करती है जो भारत में या उसके बाहर किसी भी स्थान पर किसी नागरिक अपराध करने के लिए मुकदमा चलाने वाले व्यक्ति पर लगाया जा सकता है, यदि धारा 69 के तहत आरोप लगाया जाता है और कोर्ट मार्शल द्वारा दोषी ठहराया जाता है। धारा 70 कुछ ऐसे व्यक्तियों के लिए प्रावधान करती है जिन पर कुछ परिस्थितियों को छोड़कर कोर्ट मार्शल द्वारा मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है। ऐसे व्यक्ति वे हैं जो सेना, नौसेना या वायु सेना कानून के अधीन नहीं होने वाले व्यक्ति के खिलाफ हत्या, गैर इरादतन हत्या या बलात्कार का अपराध करते हैं। यदि अपराध सक्रिय सेवा के दौरान या भारत के बाहर किसी स्थान पर या केंद्र सरकार द्वारा अधिसूचना द्वारा निर्दिष्ट सीमा चैकी पर किया गया हो, तो उन पर उन तीन अपराधों में से किसी का कोर्ट मार्शल द्वारा मुकदमा चलाया जा सकता है। इसलिए इतना स्पष्ट है कि अन्य अपराध करने वाले व्यक्ति, जिन पर कोर्ट मार्शल और सामान्य आपराधिक न्यायालय दोनों का क्षेत्राधिकार है, उन पर कोर्ट मार्शल द्वारा मुकदमा चलाया जा सकता है और अवश्य ही चलाया जाना चाहिए, यदि अपराध तब किए गए हैं जब आरोपी सक्रिय सेवा में हो या भारत के बाहर किसी

भी स्थान पर हो या एक सीमांत चैकी पर हो। उन परिस्थितियों का यह संकेत जिसमें कोर्ट मार्शल द्वारा मुकदमा चलाना विवेक का बेहतर प्रयोग होगा, एक सूचकांक है कि कोर्ट मार्शल द्वारा या सामान्य कोर्ट द्वारा मुकदमा चलाने के बारे में संबंधित अधिकारी को किन विचारों के आधार पर निर्णय लेना चाहिए। इस तरह के विचार सेना में अनुशासन बनाए रखने, जिन व्यक्तियों के विरुद्ध अपराध किए गए हैं और अपराधों की प्रकृति के आधार पर हो सकते हैं। अनुशासन के उद्देश्य से यह बेहतर माना जा सकता है कि जो अपराध गंभीर प्रकार के नहीं हैं, उनकी सुनवाई आम तौर पर कोर्ट मार्शल द्वारा की जाए, जिसे धारा 69 के तहत अधिकार प्राप्त है। सामान्य कानून द्वारा प्रदान की गई सजा देने के लिए और साथ ही ऐसी कम सजा देने के लिए जैसा कि उन्होंने अधिनियम में उल्लेख किया है। अध्याय 7 में विभिन्न दंडों का उल्लेख है जो कोर्ट मार्शल द्वारा दिए जा सकते हैं और धारा 72 में प्रावधान है कि अधिनियम के प्रावधानों के अधीन, धारा 34 व 68 में निर्दिष्ट किसी भी अपराध के लिए किसी व्यक्ति को दोषी ठहराने पर कोर्ट मार्शल हो सकता है। साथ ही, वह या तो वह विशेष सजा दें जिसके साथ अपराध को उक्त धाराओं में दंडनीय बताया गया है या उसके बदले में अपराध की प्रकृति और सीमा को ध्यान में रखते हुए धारा 71 में निर्धारित पैमाने में कम सजा में से कोई एक सजा दे। ।

सेवा की अत्यावश्यकता भी एक कारक हो सकती है। अपराध तब किया जा सकता है जब अभियुक्त शिविर में हो या उसकी इकाई मार्च पर

हो। इससे बड़ी असुविधा होगी यदि घटना के अभियुक्तों और गवाहों को, यदि उनमें से सभी या कुछ सेना से संबंधित हों, सामान्य आपराधिक न्यायालय में सुनवाई के लिए छोड़ दिया जाए।

ऐसे परीक्षणों और परिणामी अपीलों और पुनरीक्षण, फिर कोर्ट मार्शल द्वारा परीक्षणों की प्रक्रिया के कारण, एक सामान्य अदालत में मुकदमों में अधिक समय लगना तय है। सेना में सेवा की आवश्यकताओं के लिए त्वरित परीक्षण की आवश्यकता है। अधिनियम की धाराएँ 102 और 103 कोर्ट मार्शल द्वारा मुकदमे को यथासंभव तीव्र गति से चलाने की वांछनीयता की ओर इशारा करती हैं। धारा 120 की उप-धारा 2 के प्रावधानों के अधीन, एक सारांश कोर्ट मार्शल अधिनियम के तहत दंडनीय किसी भी अपराध की कोशिश कर सकता है और उप-धारा (2) में कहा गया है कि एक सारांश कोर्ट मार्शल रखने वाला अधिकारी एक जिले को बुलाने के लिए सशक्त अधिकारी के संदर्भ के बिना कुछ अपराधों का विचारण नहीं करेगा। कोर्ट मार्शल या सक्रिय सेवा पर कथित अपराधी के मुकदमे के लिए एक सारांश जनरल कोर्ट मार्शल, जब तत्काल कार्रवाई के लिए कोई गंभीर कारण नहीं है और ऐसा संदर्भ अनुशासन को नुकसान पहुंचाए बिना किया जा सकता है। यह आगे इंगित करता है कि विचारण की प्रकृति को तय करने वाले कारक तत्काल कार्रवाई के कारण और अनुशासन में बाधा कारित करने वाले कारक है।

इस तरह के विचार, जैसा कि ऊपर बताया गया है, धारा 124 के प्रावधानों को जन्म देते प्रतीत होते है जो यह है कि कोई भी व्यक्ति, अधिनियम के अधीन, जो इसके खिलाफ कोई अपराध करता है, उस पर किसी भी स्थान पर ऐसे अपराध के लिए मुकदमा चलाया जा सकता है और दंडित किया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि उस पर किसी ऐसे स्थान पर मुकदमा चलाया जाए जो किसी आपराधिक अदालत के अधिकार क्षेत्र में हो, जिसके अधिकार क्षेत्र में अपराध किया गया हो। संक्षेप में, यह स्पष्ट है कि कई प्रकार की परिस्थितियाँ हो सकती हैं जो इस निर्णय को प्रभावित कर सकती हैं कि अपराधी पर कोर्ट मार्शल द्वारा मुकदमा चलाया जाए या किसी साधारण आपराधिक न्यायालय द्वारा, और इसलिए यह अपरिहार्य हो जाता है कि विवेक के आधार पर चुनाव किया जाए। अभियुक्तों पर मुकदमा किस अदालत को चलाना चाहिए, इसका निर्णय उन जिम्मेदार सैन्य अधिकारियों पर छोड़ दिया गया है जिनके अधीन अभियुक्त सेवारत होंगे। उन अधिकारियों को सेवा की अत्यावश्यकताओं, सेना में अनुशासन बनाए रखने, त्वरित सुनवाई, अपराध की प्रकृति और जिस व्यक्ति के खिलाफ अपराध किया गया है, उस पर विचार करके मार्गनिर्देशन लेना चाहिए।

अंत में, यह उल्लेख किया जा सकता है कि संबंधित सैन्य अधिकारी का निर्णय मामले का अंतिम निर्णय नहीं करता है। धारा 126 किसी अपराधी पर मुकदमा चलाने का क्षेत्राधिकार रखने वाली आपराधिक अदालत

को अधिकार देती है कि वह संबंधित सैन्य अधिकारी को अपराधी को मजिस्ट्रेट के पास पहुंचाने की मांग कर सकती है, ताकि उसके खिलाफ कानून के अनुसार कार्रवाई की जा सके या केंद्र सरकार के संदर्भ में लंबित कार्यवाही को स्थगित किया जा सके, यदि आपराधिक अदालत की राय हो उस अपराध के संबंध में कार्यवाही स्वयं के समक्ष शुरू की जाए। जब ऐसा अनुरोध किया जाता है, तो सैन्य अधिकारी को या तो इसका अनुपालन करना होगा या केंद्र सरकार को संदर्भ देना होगा जिसके आदेश परीक्षण के स्थान के संबंध में अंतिम होंगे।इसलिए सैन्य अधिकारी द्वारा प्रयोग किया जाने वाला विवेक केंद्र सरकार के नियंत्रण के अधीन है।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 549 का संदर्भ भी दिया जा सकता है जो केंद्र सरकार को उन मामलों के संबंध में संहिता और सेना अधिनियम सहित अन्य अधिनियमों के अनुरूप नियम बनाने का अधिकार देती है, जिनमें सेना, नौसैनिक या वायु सेना कानून के अधीन व्यक्तियों पर अदालत द्वारा मुकदमा चलाया जाता है। जिस पर संहिता या कोर्ट मार्शल लागू होती है। इसमें यह भी प्रावधान है कि जब किसी व्यक्ति पर ऐसे अपराध का आरोप लगाया जाता है, जिस पर सामान्य आपराधिक अदालत या कोर्ट मार्शल द्वारा मुकदमा चलाया जा सकता है, तो उसे मजिस्ट्रेट के सामने लाया जाएगा, वह ऐसे नियमों का ध्यान रखेगा, और उचित मामलों में उसके बयान के साथ उसे सौंप देगा जिस रेजिमेंट, कोर, जहाज या टुकड़ी से वह संबंधित है, उसके कमांडिंग ऑफिसर को, या निकटतम सेना,

नौसेना या वायु सेना स्टेशन के कमांडिंग ऑफिसर को, जिस अपराध का उस पर आरोप लगाया गया है, मामला कोर्ट मार्शल द्वारा चलाए जाने के उद्देश्य से हो सकता है। यह मजिस्ट्रेट को बनाए गए नियमों को ध्यान में रखते हुए, आरोपी को कोर्ट मार्शल द्वारा मुकदमे के लिए सैन्य अधिकारियों को सौंपने का विवेक देता है।

केंद्र सरकार ने एसआरओ 709 दिनांक 17 अप्रैल, 1952 द्वारा नियम बनाए, जिन्हें धारा 549 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन आपराधिक न्यायालय और कोर्ट मार्शल (क्षेत्राधिकार का समायोजन) नियम, 1952 कहा जाता है। नियमों को पूर्ण रूप से उद्धृत करना आवश्यक नहीं है। यह कहना पर्याप्त है कि जब किसी आरोपित व्यक्ति को उन अपराधों के आरोप में मजिस्ट्रेट के सामने लाया जाता है, जिन पर कोर्ट मार्शल द्वारा मुकदमा चलाया जा सकता है, तो मजिस्ट्रेट को मामले में आगे नहीं बढ़ना है, जब तक कि उसे संबंधित सैन्य प्राधिकारी द्वारा ऐसा करने के लिए प्रेरित नहीं किया जाता है। हालाँकि, वह मामले को तब आगे बढ़ा सकता है जब उसकी राय हो, दर्ज किए जाने वाले कारणों से, कि उसे सक्षम प्राधिकारी द्वारा इस संबंध में स्थानांतरित किए बिना आगे बढ़ना चाहिए। ऐसे मामले में भी उसे आरोपी के कमांडिंग ऑफिसर को अपनी राय का नोटिस देना होगा और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 243, 245, 247 या 248 के तहत सजा या बरी करने का कोई आदेश पारित नहीं करना होगा या संहिता की धारा 244 के तहत बचाव में उसकी सुनवाई करें। उक्त संहिता के धारा

254 के तहत आरोपी के खिलाफ कोई आरोप तय नहीं करना है और धारा 213 के तहत सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय को सौंपने का आदेश नहीं देना है जब तक सैन्य अधिकारियों को नोटिस की सेवा से 7 दिन की अवधि समाप्त नहीं हो जाती। यदि सैन्य अधिकारी उपरोक्त कोई भी कदम उठाने से पहले मजिस्ट्रेट को सूचित करते हैं कि उनकी राय में आरोपी पर कोर्ट मार्शल द्वारा मुकदमा चलाया जाएगा, तो मजिस्ट्रेट को कार्यवाही रोकनी होगी और आरोपी को संबंधित प्राधिकारी को संबंधित बयान के साथ सौंपना होगा जैसा कि संहिता की धारा 549 में निर्धारित है। उसे ऐसा तब भी करना होता है जब वह सैन्य प्राधिकरण द्वारा स्थानांतरित किए जाने पर मामले को आगे बढ़ाता है और बाद में उसका मन बदल जाता है और उसे सूचित करता है कि उसके विचार में आरोपी पर कोर्ट मार्शल द्वारा मुकदमा चलाया जाना चाहिए। हालाँकि, सैन्य अधिकारी अभियुक्तों के साथ क्या करते हैं, इस पर मजिस्ट्रेट का अभी भी एक प्रकार का नियंत्रण है। यदि उचित समय के भीतर सैन्य अधिकारियों द्वारा आरोपी के खिलाफ कोई प्रभावी कार्यवाही नहीं की जाती है, तो मजिस्ट्रेट राज्य सरकार को परिस्थितियों की रिपोर्ट कर सकता है, जो केंद्र सरकार के परामर्श से यह सुनिश्चित करने के लिए उचित कदम उठा सकती है कि आरोपी व्यक्ति का विधि अनुसार विचारण किया जाए। यह सब नियम 3 से 7 में निहित है। नियम 8 व्यावहारिक रूप से अधिनियम की धारा 126 से मेल खाता है। नियम 9 सैन्य अधिकारियों को अभियुक्तों को सामान्य अदालतों में सौंपने

का प्रावधान करता है, जब उनकी राय में या सरकार के आदेशों के तहत, अभियुक्तों के खिलाफ कार्यवाही मजिस्ट्रेट के समक्ष होनी है।

संहिता की धारा 549 के अनुसार और उसके तहत बनाए गए नियमों के अनुसार, किसी नागरिक अपराध के आरोपी व्यक्ति के मुकदमे के फोरम के बारे में अंतिम विकल्प केंद्र सरकार के पास होता है, जब भी किसी आपराधिक न्यायालय और सैन्य अधिकारियों के बीच फोरम के बारे में मतभेद होता है जहां एक आरोपी पर उसके द्वारा विशेष अपराध समिति के लिए मुकदमा चलाया जाता है। अधिनियम की धारा 125 और 126 में भी स्थिति समान है।

इसलिए यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 125 में निर्दिष्ट सैन्य अधिकारी का विवेक की कि किसी अपराधी का विचारण कोर्ट मार्शल या एक साधारण अदालत द्वारा मुकदमे के संबंध में किया जाना है को अधिनियम द्वारा निर्धारित किसी भी नीति द्वारा निर्देशित या किसी अन्य प्राधिकरण द्वारा अनियंत्रित नहीं कहा जा सकता है। इसलिए अधिनियम की धारा 125, गुण-दोष के आधार पर भी, संविधान के अनुच्छेद 14 के प्रावधानों का उल्लंघन करने वाली नहीं कही जा सकती।

इसलिए रिट याचिका विफल हो जाती है और अस्वीकार की जाती है।

याचिका खारिज.

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्वेता शर्मा आर.जे.एस. द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।